सशक्तिकरण मुद्दे: सामाजिक और आर्थिक

***प्रकाश सिंह बादल (शोध छात्र)**

सशक्तिकरण एक बहुआयामी अवधारणा है और इसका सम्बन्ध लोगों की सामाजिक उपलब्धियों, आर्थिक और राजनीतिक सहभागिता से जुड़ा होता है। इसके साथ ही, सशक्तिकरण एक सतत् प्रक्रिया भी है और इसकी कोई अन्तिम सीमा नहीं है। सशक्तिकरण को परिभाषित करना और उसको मापना एक चुनौती हैं। महिलाओं के मामले में तो यह और भी चुनौतीपूर्ण है क्योंकि महिलाओं के साथ दीर्घ काल से भेदभाव होता रहा है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि समाज में लैंगिक असमानता अर्थात स्त्री–पुरूषों के बीच असमानता बढ़ती गयी है।

महिला सशक्तिकरण की परिभाषाएं संसाधनों पर नियंत्रण अथवा शक्ति हांसिल करने (भौतिक एवं वित्तीय दोनों) और महिलाओं के जीवन की गुणवत्ता निर्धारित करने वाले निर्णय लेने की क्षमताओं पर बल देती है। लेकिन आमतौर पर महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य शिक्षा और स्वतंत्रता को समाहित करते हुए सामाजिक सेवाओं के समान अवसर प्रदान करना, राजनीतिक और आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तहत सुरक्षा देने का अधिकार आदि प्रदान करने से है।

इस शोध प्रपत्र में महिला सशक्तिकरण के सन्दर्भ में सामाजिक एवं आर्थिक मुद्दे पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है जिसमें आंकड़ों के साथ ही सरकारी कानून एवं विभिन्न योजनाओं की सार्थकता के साथ उपलब्धियों को उजागर करते हुए कमियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए, सुझाओं या करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार लिंगानुपात 1000 में से 943 महिला हैं जिसको हम 2001 की जनगणना की तुलना में बेहतर कह सकते हैं। वहीं राज्यों के ऊपर दृष्टि डालते हैं तो केरल जहां लिंगानुपात 1084 है, वहीं उसकी शिक्षा दर भी 94 प्रतिशत है जिसको आधार बनाते हुए उन कारणों को जानने का प्रयत्न कर उसके समाधान में आगे बढ़ने की आवश्यकता है। क्योंकि जब लिंगानुपात में ही कमी है तो सशक्तिकरण के विकास को एक पक्षीय दृष्टिकोण में देखा जा सकता है।

सम्पूर्ण भारत में साक्षरता दर 73 प्रतिशत है जिसमें से पुरूष 80.9 प्रतिशत, वहीं पर महिलाएं 64.6 प्रतिशत हैं। यह आंकड़ा भी महिला के क्षेत्र में सशक्तिकरण पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है? वहीं पर केरल जैसे राज्यों में साक्षरता दर में वषद्धि के साथ ही साथ महिला साक्षरता दर (71.2 प्रतिशत) में भी पर्याप्त वषद्धि है जिसको आधार बनाकर उन कारणों पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर समावेषित विकास में बराबर की भागीदारी की भूमिका का निर्वाह करना होगा तभी सही मायने में समझा जायेगा कि महिला को अधिकार प्रदान कर सशक्तिकरण में प्रयास समझा जायेगा।

वहीं, 2011 की जनगणना को देखें तो शिशु लिंगानुपात 919 है जिसको हम कह सकते हैं कि नींव में ही कमियां है तो पूरे विकास रूपी बिल्डिंग की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिए समाज में विद्यमान बुद्धिजीवी वर्ग से लेकर सामान्य व्यक्ति तक को इस भयावह आंकड़े पर गहन विचार करना होगा और तद्पोरान्त जनचेतना के माध्यम से अपने परिवार से ही शुरू कर, समाज तक परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।

शिक्षा के क्षेत्र में देखा जाये तो वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता दर में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी तरफ विभिन्न राज्यों में साक्षरता की दर में भिन्नता भी देखी जाती है। इसका परिणाम राज्य की परिस्थितियां एवं सुविधा पर निर्भर करता है, लेकिन हम यह कह सकते हैं कि संविधान के मूल अधिकार, नीति निदेशक तत्व एवं मूल कर्तव्यों में 6–14 वर्ष निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान की व्यवस्था है, इस साक्षरता दर की वृद्धि में एक सशक्त माध्यम स्थापित साबित होता है।

*राजनीति विज्ञान विभाग, डी.एस.बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

जहां तक हम शिक्षा को जब वित्तीय आत्मनिर्भरता एवं सामाजिक सोंच के पैमाने पर कसने का प्रयास करते हैं तो इनके बीच कई समस्याएं भी उभरकर सामने आती हैं– देखा जाये तो अधिकांशतः जनसंख्या शिक्षित तो है लेकिन बेरोजगार, उसमें भी एक तो महिला की साक्षरता दर कम है दूसरी ओर ऊपर से जो शिक्षित हैं वह बेरोजगार का सामना कर रहीं हैं। हमें खुशी एवं प्रेरणा मिलती हैं जब शिक्षा में अव्वल होते हुए महिलाएं उच्च–उच्च पदों पर आसीन होती हैं जैसे–इन्दिरा नूई, चन्दा कोचर, विदेश सचिव सुजाता सिंह, भारतीय स्टेट बैंक की अध्यक्ष अरूधंतीय भट्टाचार्य, अनेक आई. ए.एस./आई.पी.एस. अधिकारी महिलाएं हैं। इन तमाम उपलब्धियों की उपयोगिता उस रूढ़िवादी सोच पर कुठाराघात करने का प्रयास करती है जो यह सोचते हैं कि पढ़–लिखकर करोगी क्या, अन्ततः चूल्हा–बर्तन ही सम्भालना है। शिक्षा के गुणात्मक स्तर में असमानता जैसे–एक तरफ ग्रामीण पृष्ठभूमि के वासी सर्वप्रथम गरीबी के कारण प्राथमिक पाठशाला से शिक्षा को प्रारम्भ करते हुए धीरे–धीरे परिस्थिति अनुरूप आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं, वहीं दूसरी तरफ निजी संस्थाओं वाले स्कूलों, कालेजों, प्रबन्धन संस्थान की गुणात्मक शिक्षा प्रणाली हमें शिक्षा के स्तर में असमानता को प्रकट करती है। इसीलिए सरकार को चाहिए कि हमारे सरकारी स्कूलों, कालेजों, प्रबन्धन संस्थान में गुणात्मक पहलू को तटस्थ रूप से लागू करने का भरसक प्रयत्न होना चाहिए, नहीं तो भारतीय पितृसत्तात्मक समाज जो रूढ़िवादी सोच से उभर नहीं पाये हैं कि पढ़–लिखकर करोगी क्या, अन्ततः चूल्हा–बर्तन ही सम्भालना है उनकी बात कहीं न कहीं सही साबित न हो जाये।

आज इस सूचना क्रान्ति एवं भूमण्डीकरण के युग में भारत की युवा जनसंख्या को सही दिशा एवं दशा उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। किन्ही भी परिस्थिति का सामाना कर हमारे भारत की ग्रामीण एवं नगरीय समाज की महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में अग्रसर होती हैं, तो वहीं पर चाहे वह गरीब घर की बेटी हो या मध्यम या उच्च वर्ग की, उसके शिक्षा की सार्थकता का व्यवसायिक रूपान्तरण अति आवश्यक है। इसीलिए आज भारत सरकार को शिक्षा के पाठ्यक्रम में व्यवसायिक शिक्षा के साथ–साथ उनके अधिकार एवं कर्तव्यों को समावेशित करते हुए शिक्षा प्रदान करने का प्रयास होना चाहिए, क्योंकि जब शिक्षा का नींव मजबूत होगा तो महिलाएं अपने अधिकारों को जानेंगी तद्पोरान्त अपनी सहभागिता सामाज के विभिन्न आयामों में प्रगटीकरण कर सकेंगी। प्रायः जनसंख्या दृष्टिकोण से मालूम होता है कि भारत गांव में बसता है तो हमें उस नींव की मजबूती ऐसा प्रदान करें जिससे समावेशी विकास का एक वृहद वृक्ष तैयार हो सके, तब जाकर भारत वैश्विक परिदृष्य में अपने को तर्कों की कसौटी पर कस कर अभिव्यक्त कर सके कि भारतीय समाज में महिलाएं सशक्तिकरण की धारा में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, जब समाज में विद्यमान विविध प्रकार की हिंसाओं–घरेलू हिंसा, बलात्कार, दहेज हत्या, बाल विवाह, अपहरण के आंकड़ों की तरफ जैसे–प्रति 24 मिनट में एक महिला यौन शोषण, प्रति 43 मिनट में अपहरण, प्रति 54 मिनट में बलात्कार का शिकार हो रही हैं, तब हमारा ध्यान समाज में व्याप्त व्यवस्था के लोगों से अनेकों प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है कि आंखिर समाज में क्या कमियां हो गई कि इतने घिनौने अपराध नहीं रूक पा रहे हैं? या तो परिवार में नैतिक शिक्षा कम हो गई है या प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर की शिक्षाओं का स्तर ही बिल्कुल दिशाहीन है। आंखिर महिलाएं भी समाज का एक अंग हैं जिससे परिवार रूपी वृक्ष तैयार होता, तो उसके साथ इतनी बर्बरता क्यों? या फिर विभिन्न कानून जैसे–दहेज हत्या अधिनियम, कन्या भ्रूण हत्या अधिनियम, घरेलू हिंसा अधिनियम इत्यादि का उचित ढंग से परिपालन नहीं किया जा रहा है? क्योंकि यही आंकड़े वैश्विक परिदृश्य में भारत को पीछे धकेलने का प्रयास करती हैं क्योंकि जब महिलाएं ही सुरक्षित नहीं तो कैसा विकास, कैसी आर्थिक संवृद्धि। इसलिए आज आवश्यकता एवं घर–घर की जरूरत है कि हम सबझे कि बेटे–बेटियों में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि यही बेटियां चाहे वह प्राचीन की गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा हों या मध्यकाल की रजिया सुल्तान, जहांआरा, रोशनआरा, नूरजहां या आजादी के पहले झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत, सरोजनी नायडू, अरूणा आसफअली या आजादी के बाद सुचेता कृपलानी, इन्दिरा गांधी, प्रतिभा देवी सिंह पाटिल, मीरा कुमारी, इरोम शर्मिला, वन्दना शिवा, इन्दिरा नुई, चन्दाकोचर, कल्पना चावला इत्यादि ने समाज में पुरूषों के बराबर कन्धा से कन्धा मिलाकर सफलता की ओर आगे ही बढ़े हैं। इसलिए पितृसत्तात्मक समाज यह न सोचे कि पुत्र हमारे श्राद्ध–कार्य को सम्पन्न करेगा इसलिए पुत्र तो होना चाहिए लेकिन दूसरी तरफ परिवर्तन की बयार चल पड़ी है क्योंकि जगह–जगह यह देखा जा रहा

है कि बेटियां भी माता–पिता के श्राद्ध–कार्यों में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन कर रहीं हैं, इसलिए झूठा सच को पितृसत्तात्मक समाज यथार्थ रूप न दें।

शिक्षित हुई तो अधिकार मालूम हुआ, उसके साथ ही आत्मनिर्भरता बढ़ी तो राजनीतिक सहभागिता भी बढ़ी, जो 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के द्वारा स्थानीय शासन में एक तिहाई आरक्षण के द्वारा जगह–जगह अपने योगदान से समाज को लाभान्वित कर रहीं हैं। कई राज्यों में 50 प्रतिशत आरक्षण का लाभ महिलाओं को पंचायती स्तर पर प्राप्त हो रहा है। लेकिन संसद से लेकर पंचायत तक कहीं–कहीं इनके अधिकारों का दुरूपयोग उनके पति या परिवार के द्वारा किया जा रहा है। इसलिए आज महिलाओं को ज्यादा से ज्यादा अपने अधिकारों का सदुपयोग करते हुए यह मिसाल पेश करने की आवश्यकता है कि उस ग्राम की सरपंच महिला, जिसने ग्राम को विकास के नक्शे में महत्वपूर्ण स्थान दिलवाया, ताकि वह महिला भी प्रेरित हो सके जिसके अधिकारों का दुरूपयोग उनके पति या परिवार के द्वारा किया जा रहा है। क्योंकि महिला सशक्त रूप से राजनीतिक सहभागी होंगी तो उनसे सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का निराकरण कानूनी रूप धारण करके किया जा सकेगा। यद्यपि आवश्यकता इस बात की है कि पितृसत्तात्मक समाज यह समझे कि महिला भी सशक्त होंगी तो तभी परिवार सशक्त होगा और तद्पोरान्त देश भी उस समावेशित विकास के आंकड़े का सुगमतापूर्वक प्राप्त कर सकेगा, जिससे वैश्विक परिदृश्य के विभिन्न रिर्पोटों में अग्रणी भूमिका का निर्वहन करेगा।

आंकड़े बताते हैं कि भारत में पुरूषों के मुकाबले महिलाओं की स्थिति चिन्तनीय है। अतः सच्चाई को ढकने से काम नहीं चलेगा। प्रतीकवाद और बहानों का सहारा लिए बिना हमें आगे आकर समस्या का समाधान करना होगा। परन्तु केवल सरकारी हस्तक्षेप से काम नहीं बनेगा, बेहतर परिणाम तभी प्राप्त होंगे जब दष्ढ़ प्रतिज्ञ महिलाएं स्वयं अपने आप को सशक्त बनाने का प्रयास करेंगी और इसमें उन्हें समाज के प्रबुद्ध वर्ग का प्रोत्साहन मिलेगा।

अर्थात, महिला सशक्तिकरण एक ऐसा महत्वपूर्ण सामाजिक घटक है जिसको समझने के लिए हमें अपने पारिवारिक ढांचे सहित उसके बहुआयामी प्रभाव पर मनन करना होगा। जनगणना 2011 से एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि देश में स्त्री और पुरूष का अनुपात संतुलित नहीं है। इससे भी अधिक चिन्ता की बात यह है कि शून्य से 6 वर्ष की आयु तक बच्चों में लिंगानुपात लड़कों के पक्ष में झुका है। संतुलित जनसंख्या के लिए काम करना एक बड़ी चुनौती है। यदि मौजूदा पूर्वाग्रहों पर विजय पाना है तो महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करनी होगी। उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास, ऋण सुविधाएं और निर्णय लेने के अवसर के साथ–साथ कानूनी अधिकार भी प्रदान करने होंगे ताकि वे सही मायने में सशक्त और समर्थ बन सके।

जहां तक भारत में महिला सशक्तिकरण का मुद्दा आर्थिक सन्दर्भ में देखने की बात आती है तो भारतीय महिलाओं की स्थिति सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न योजनाओं जैसे–स्वयंसिद्धा, स्वावलम्बन, स्वधार, के द्वारा महिलाओं को रोजगार दिलाने में काफी मददगार साबित हो रही हैं। सन्–1992 में राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की पहल एवं विशेष रूचि लेने से आज स्वयं सहायता समूह पूरे देश में फैल चुका है जिसका अधिकांश लाभ दक्षिण भारत के राज्य विशेषकर आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरल आदि उठा रहे हैं। देश में इस समय 35 लाख से अधिक स्वयं सहायता समूह हैं। इनमें से 90 प्रतिशत महिला स्वयं सहायता समूह हैं। ग्रामीण भारत में महिला स्वयं सहायता समूह ने हजारों–लाखों गरीब तबके की महिला को न केवल घर की चौखट से बाहर निकाला है बल्कि उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में भी समर्थ बनाया है। इसके साथ–साथ उन्हें "सामूहिक आवाज" भी दी हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी उभर रहे हैं स्वयं सहायता समूह के जरिये ग्रामीण महिलाओं में बचत को बढ़ावा मिला है यह योजना भारत सरकार का एक क्रान्तिकारी कदम है। इनके जरिये न सिर्फ लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है बल्कि एकजुट होकर सामाजिक कुरीतियों, नारी उत्पीड़न तथा ऊँच–नीच के भेदभाव को भी मिटाया जा सकता है।

भारत में स्वयं सहायता समूह का विकास तो तेजी से हो रहा है लेकिन इन समूहों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है जैसे–क्षमता निर्माण पहलू सबसे कमजोर है जो "निरन्तर संस्था" द्वारा किये गये अध्ययन में भी पाया गया है कि 2700 समूहों में सिर्फ 37 समूहों को ही किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण का अवसर मिला था। उनमें भी रोजगार या आजीविका सम्बन्धी प्रशिक्षण तो मात्र 21 समूहों को ही मिला। सम्भवतः यही कारण है कि इतने बड़े पैमाने पर स्वयं सहायता समूह के

जरिये लघुऋण रूपी संसाधनों तक पहुंच बनाने के बाद भी गरीबी और गरीबी की स्थिति में कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं दिखता है। इसीलिए पंचायती स्तर के कार्यों में सहभागिता को जब स्वयं सहायता समूह के कार्यों से जोड़ा जायेगा तभी सही अर्थों में महिलाएं सशक्त होंगी तथा समाज में उपयोगी भूमिका निभा सकेंगी।

कहा जाता है कि आज भी भारत के 58.2 प्रतिशत लोग कृषि पर ही निर्भर है जो रोजगार का सबसे बड़ा माध्यम है, लेकिन उसमें पूरे साल भर काम नहीं मिलता है जिससे अधिकांश लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन करने पर मजबूर हो जाते हैं। उसमें भी महिला का स्थान अत्यन्त दयनीय है क्योंकि न तो वह भूमि की मालकिन होती है, न ही उनको बैंक ऋण उपलब्ध करवाता है इसीलिए आवश्यकता इस बात की है कि सामाजिक सोच में परिवर्तन कर महिलाओं को भी भूमि में हिस्सेदारी प्रदान करें जिससे विविध सुविधाओं का उपयोग करते हुए महिलाएं आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हो सके।

यद्यपि महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होंगी तो रोजगार बढ़ेगा जिससे उनके द्वारा परिवार में शिक्षा का दर भी बढ़ेगा और साथ ही साथ स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार होगा, तद्पोरान्त परिवार एवं समाज में उनका महत्व बढ़ेगा और उन महिलाओं को प्रेरणा मिलेगी जो निर्भरता एवं हीनता ग्रस्त जीवन–यापन कर रही हैं। शिक्षा एवं जागरूकता के बढ़ने पर ही महिलाएं कानून द्वारा दी गयी सुविधाओं का लाभ उठा सकेंगी, तभी जाकर वे सरकार द्वारा जैसे–किशोरियों की अधिकारिता हेतु राजीव गांधी योजना, महिलाओं के लिए प्रशिक्षण तथा रोजगार सहायता कार्यक्रम योजना, राष्ट्रीय महिला कोष, माताओं के लिए स्वास्थ्य कार्यक्रम, जननी सुरक्षा योजना, जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम एवं अन्य योजनाओं का सही तरीके से लाभ उठा सकेंगी, नहीं तो ये सारी योजनाएं कागजों तक ही सिमट कर रह जायेंगी।

इस प्रकार कोई संदेह नहीं है कि महिलाओं में आत्मविश्वास अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता तथा अन्याय से लड़ने की शक्ति शिक्षा से ही पैदा होती है। भारत में स्वतंत्रता के बाद से महिला कल्याण के लिए एवं 90 के दशक के बाद से महिला सशक्तिकरण हेतु सरकारी व गैर–सरकारी स्तर पर निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य स्थिति, आर्थिक सहभागिता, निर्णय क्षमता, कानूनी ज्ञान, आदि के सन्दर्भ मे ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में सशक्तिकरण से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जो सराहनीय है। 73वें संविधान संशोधन पंचायती स्तर में महिलाओं को सहभागिता प्रदान कर, उन्हें राजनीतिक शक्ति संरचना में स्थान देने का जो प्रयास किया गया है वह बेहद सफल साबित हो रहा है। आज निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की जरूरत है। साथ ही साथ समाज में विद्यमान रूढ़िवादी मानसिक सोच में परिवर्तन करने की आवश्यकता हैं, क्योकि महिलाएं तो समाज से यही दर्द बयां कर रही है जो इस पंक्ति में दिखाई पड़ता है–

हटा दो सब बाधाएं मेरे पथ की,
मिटा दो आशंकाएं सब मन की,
जमाने को बदलने की शक्ति को समझो,
कदम से कदम मिला के चलने तो दो मुझको।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

- सिंहः मीनाक्षी, 2013, प्रथम संस्करण, "महिला कानून", ओमेगा पब्लिकेशन्स, दरियागंज नई दिल्ली।
- अग्रवालः मीनू, 2013, प्रथम संस्करण, "वूमेन इम्पॉवरमेन्ट एण्ड जेन्डर इक्वलिटी", कनिस्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूट, नई दिल्ली।
- श्रीवास्तवः सुधारानी, एवं श्रीवास्तवः रागिनी, 2009, "महिला अधिकार एवं उनका उत्पीड़न", कॉमन वेल्थ पब्लिशर्स।
- कुरूक्षेत्र, नवम्बर 2009, "ग्रामीण ऋण व्यवस्था",निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र, जून 2010, "ग्रामीण महिला सशक्तिकरण", निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली। ।
- योजना, जून 2012 "स्त्री सशक्तिकरण" योजना भवन, संसद मार्ग नई दिल्ली।